



# आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 26

एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 20 सितम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: [apspunjab2010@gmail.com](mailto:apspunjab2010@gmail.com),

[www.aryapratinidhisabha.org](http://www.aryapratinidhisabha.org)

वर्ष-45, अंक : 26, 17-20 सितम्बर 2020 तदनुसार 5 आश्विन, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

## पञ्च भूतों का अनादि चक्र

ले०-स्वामी वेदानन्द ( दयानन्द ) तीर्थ

**पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।  
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥**

-ऋ. १।१६४।१३

**शब्दार्थ-तस्मिन्** = उस **पञ्चारे** = पाँच अरों वाले **चक्रे** = चक्र के **परिवर्तमाने** = चलने पर **विश्वा** = सब **भुवनानि** = भुवन, लोक **आतस्थुः** = सब ओर स्थित होते हैं। **तस्य** = उसका **अक्षः** = अक्ष **न** = न तो **तप्यते** = तपता है और **न** = न **भूरिभारः** = बहुत भारवाला होता है। **सनात्+एव** = सनातन से ही वह **सनाभिः** = बन्धनयुक्त होने से **न** = नहीं **शीर्यते** = बिखरता, फटता, नष्ट होता।

**व्याख्या**-यह संसार-चक्र चल रहा है। न्यायदर्शन [१।१२] के वात्स्यायनभाष्य में संसार का लक्षण इस प्रकार है-

**'इमे मिथ्याज्ञानादयो दुःखान्ता धर्मा, अविच्छेदेनैव प्रवर्तमानाः संसारः'**

मिथ्याज्ञान, दोष, प्रवृत्ति, जन्म और दुःखों का निरन्तर प्रवृत्त रहना संसार है। मिथ्याज्ञान से राग, द्वेष, मोह होते हैं, राग-द्वेष-मोह से प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति से जन्म होता है और जन्म साक्षात् दुःख है।

साधारण लोग इस गहरे संसार के सार तक नहीं पहुँच पाते। उनके मत में सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-भूमि, आकाश-पर्वत, नदी-नाले-झील-तालाब, खेती-धनधान्य, सामान, मकान, पिता, पुत्र, माता-भगिनी आदि सब मिल-मिलाकर संसार हैं। चाहे तत्त्वज्ञानियों का संसार लें, चाहे अज्ञानियों का, दोनों का कारण एक ही है। निमित्तकारण का विचार छोड़कर उपादानकारण पर ध्यान दीजिए। सभी के मत में पञ्चभूतात्मक प्रकृति ही इसका उपादानकारण है। गिरि, नदी, भूमि, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह आदि नानाविध लोक इसी से बने और इसी में रहते हैं। घड़ा मिट्टी से बनता और मिट्टी में रहता है। मिट्टी से बाहर घड़ा कहाँ है? इसी भाव से वेद कहता है- **'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा'** = पञ्चभूतमय, निरन्तर फिरते हुए इस संसारचक्र में सब भुवन स्थित हैं, अर्थात् सारा संसार पाँच भूतों से बना है और इन्हीं में स्थित है।

रथ के पहिये का अक्ष तप जाता है, उसे विश्राम देना होता है। परिमाण से अधिक भार पड़ जाए तो वह टूट जाता है, किन्तु यह चक्र **'नाक्षस्तप्यते न भूरि भारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः'** इस चक्र का अक्ष न तपता है, न बहुत भार से टूटता है और न शीर्ण होता है, क्योंकि सनातन से यह सनाभि=बन्धनयुक्त है। अनादिकाल से यह संसार चला आ रहा है। इसका अक्ष लक्ष्य पर पहुँचने से पूर्व तप ही

नहीं सकता। बहुत भार तो तब हो, जब इससे बाहर कुछ भार हो। भार तो पहले सारा इसी में है। भगवान् इसकी नाभि है, अतः इसके शीर्ण होने का प्रश्न ही नहीं है। दिन के बाद रात्रि, रात्रि के पश्चात् दिन के समान सृष्टि के बाद प्रलय, प्रलय के बाद पुनः सृष्टि इसी तरह संसारचक्र चल रहा है।

( स्वाध्याय संदोह से साभार )

**सामाजिक कार्यकर्ता स्वामी  
अग्निवेश जी नहीं रहे**



विनम्र श्रद्धांजलि

**सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।  
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि ॥**

-अथर्व. ४.१६.५

**भावार्थ**-हे श्रेष्ठ प्रभो! ऊपर का द्युलोक, नीचे का पृथिवी लोक और इन दोनों में जो प्राणिमात्र वर्तमान हैं और जो हमारे सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान हैं इन सबको आप अपनी सर्वज्ञता से देख रहे हैं। जैसे कोई जुआरी पासों को जानकर फैंकता है ऐसे आप ही प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों के फलप्रदाता है।

**न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुणः स्वधावन् ।  
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्तु त्वज्जनो मायी  
बिभाय ॥**

-अथर्व. ५.११.४

**भावार्थ**-हे स्वामिन् वरुण! आपसे बढ़कर कोई बुद्धिमान् नहीं है, आप उन सब ब्रह्माण्डों और उनमें रहने वाले सब प्राणियों को ठीक-ठीक जानने वाले हैं। कोई पुरुष कैसा ही बुद्धिमान् चालाक वा छली, कपटी क्यों न हो, वह भी आपसे डरता है।

**अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः ।  
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥**

-अथर्व. १०.८.४४

**भावार्थ**-हे भयहारिन् परमात्मन्! आप अकाम, धीर, अमर और अजन्मा हैं सदा आनन्द से तृप्त हैं, आप में कोई न्यूनता नहीं है। आप जो कि धीर, अजर, युवा, अर्थात् सदा एक रस आत्मा को जानने वाला महात्मा ही, मृत्यु से कभी नहीं डरता। आप निर्भय हैं, आपको जानने वा मानने वाला महापुरुष भी निर्भय हो जाता है।

## सबसे बड़ी कसौटी—सार्थकता

ले.-प्रा. भद्रसेन दर्शनाचार्य शालीमार बाग-होशियारपुर

कसौटी शब्द किसी की जांच, परख, परीक्षा के साधन के लिए प्रयुक्त होता है। जिस से अभीष्ट वस्तु के उचित-अनुचित, उपयोगी-अनुपयोगी, साधु-असाधु पन या सत्यता-असत्यता की परीक्षा हो सके। यह विचार्य वस्तु अपने-आप में कितनी सक्षम, समर्थ, सफल है।

सार्थकता-शब्द स+अर्थ+क+ता का मेल है। अर्थात् इन-इन अंशों के मेल से सार्थकता शब्द बनता है, था ये-ये अंश यहां स्पष्ट रूप से सामने आते हैं या दीखते हैं। इन सब में से अर्थ शब्द केन्द्र बिन्दु है। शेष इस के सहायक हैं।

स-ऐसे स्थलों पर साथ, सहित भाव को दर्शाता है। अतः स+अर्थ से सार्थ सामने आता है। ऐसे शब्द कभी-कभी ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे कि समुद्र, सदा, सार्थ, सभा हां, इस प्रकरण में सार्थ का अर्थ है-जो अर्थ के साथ होता है। अतः अर्थ सहित को सार्थ जहां कहा जा सकता है, वहां प्रयोजन आदि जो अर्थ हैं। वे भी ग्रहीत हो जाते हैं।

साहित्य में अर्थ शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अतः इस शब्द के ऊपर विस्तार से विचार-विमर्श बाद में करेंगे। यहां पहले क और ता को लेते हैं। क-प्रायः वाले अर्थ में आता है। अतः सार्थ के साथ क प्रत्यय लगने पर सार्थक बन जाता है। इसलिये सार्थ वाले को सार्थक कह सकते हैं। सार्थक का समानान्तर शब्द है-सफल। जो कि बहुत प्रसिद्ध तथा अत्यधिक प्रयुक्त होता है। इस का भाव भी स्पष्ट है सार्थकता का अन्तिम अंश है-ता। हिन्दी भाषा में पने अर्थ में चलता है। जिस से किसी वस्तु-व्यक्ति में होने वाले गुण, विशेषण, शक्ति, स्थिति विशेष को प्रकट करता है। जैसे कि-मधुर (मिठास, मधु=शहद, मीठा और र = वाला) + ता-मधुरता मधुरपना अर्थात् मधुर से युक्त होना। ऐसे ही मृदु-ता = कोमलपन। इसी को ही कोमलता शब्द से भी अभिव्यक्त करते हैं। इस आधार पर सार्थकता का अर्थ होगा। जिस में सार्थकपन हो। इस जैसा स्पष्ट शब्द है-सफलता और

इस का भाव है-जिस प्रयोजन, दृष्टि से वह है, उसमें चरितार्थ। सफल होना। उचित ठहरना।

आइए! अब अर्थ शब्द पर विस्तार से विचार करते हैं। ऋ धातु से अर्थ पद प्रकट होता है। यह धातु गति अर्थ वाली है।

गति, प्राप्ति दोनों अर्थ हैं। अतः गति युक्त, प्राप्त होने वाले को अर्थ कहा जाता है। अतः अर्थ का धन=पैसा अर्थ अति प्रसिद्ध है। इसीलिए धन से जुड़े शास्त्र को अर्थशास्त्र कहा जाता है। अर्थ के चल-अचल जहां अनेक रूप हैं वहां कमाई के इन अनेक रूपों से धन की कभी न कभी प्राप्ति होती है। पर हाथ वाले रुपये पैसे की महिमा अलग ही है। हर एक इस के हाथ में आते ही प्राप्ति [अर्थ] कुछ हाथ में आ गया का सन्तोष दिखाता है। यतोहि तब जरूरत की चीज एकदम मिल जाने पर तृप्ति अनुभव कराता है। धन शब्द तृप्ति अर्थ वाली धातु से बनता है। आज क्रय-विक्रय के अनेक उत्तरोत्तर महत्ता चमक विद्यमान है। इतने वर्ष व्यतीत होने पर तथा उस का अब विकल्प आ चुका है फिर भी नोट बन्दी की चुभन कहीं न कहीं जगा दी जाती है।

हां, पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ शब्द [धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में] धन का वाचक है। यह कितनी विलक्षण-विशिष्ट-विचित्र बात है, कि संस्कृत भाषा में धन वाचक अधिकतर शब्द नपुंसक लिंग में है। फिर भी धन की शक्तिमत्ता सर्वत्र स्पष्ट है। तभी तो इसी के गीत चलते हैं, जैसे कि-सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति। वित्तेनहीनः सर्वतो विहीनः। येन-एकेन बिना [सर्व शून्यम्]

अर्थ का एक और अर्थ-हम अपने हृदय के भाव भाषा बोलने के साधन के द्वारा सामने लाते हैं। भाषा वाक्यों का समूह है और वाक्य-पदों-शब्दों का मेल है, ये शब्द प्रथम स्थिति में क्रियापद और नामपद रूप मुख्य दो भेद रखते हैं। फिर इन के सहयोगी रूप में उपसर्ग, विशेषण, सर्वनाम आदि के भेद आते हैं। प्रत्येक पद धातु-प्रत्यय के संयोग से सिद्ध होता है। इन दोनों के आधार पर ही

शब्द का अर्थ निश्चित होता है। इनके कारण ही हर पद में कम से कम दो वर्ण होते हैं। हां, स्वर = आकाश। जैसे एक-दो शब्द ही हैं, जिन में एक ही वर्ण है।

शब्द-अर्थ-शब्द किसी को कहने, बोलने या किसी की ओर संकेत करने के अर्थ में अधिक चलता है। शब्द से जो कहा जाता है, जिसकी ओर संकेत किया जाता है। वही अर्थ द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व, तथ्य, वस्तु है, जिससे लिए शब्द का प्रयोग होता है। जैसे कि जल या नीर एक शब्द है। इस से या इन को बोल कर जिस वस्तु द्रव्य को सामने लाते हैं, वह अर्थ है। व्यवहार में प्रायः शब्द-अर्थ संयुक्त-संपृक्त-मिले हुए रूप में चलते हैं। वागर्थविव सम्पृक्तौ-रघुवंश। हां-कई बार प्रकरण के भेद से शब्द का अर्थ होता है। जैसे सैंधव = नमक, घोड़ा [अश्व]

एक नया अर्थ-अच्छाई, भलाई, सुख धर्म भी अर्थ का भाव है। इस का विपरीत शब्द अनर्थ = [बुरा न + अर्थ = जो अर्थ-भला, अच्छा नहीं, वह अनर्थ] बोल चाल में अधिक चलता है। जैसे कि-क्यों अनर्थ कर रहे हो, क्यों अनर्थ मचा रखा है। अनर्थ तो न करो। कहीं-कहीं इस अनर्थ का उलटा भी अर्थ होता है। वैसे मीमांसा दर्शन में लक्षणोऽर्थो धर्मः [1,1,1]

इस सूत्र के अर्थ शब्द का भाष्यकार शाबर ने सुख कारक, अच्छा अर्थ दिया है।

अर्थ का और एक सामान्य अर्थ-प्रयोजन, उद्देश्य, लक्ष्य भी इस को कह सकते हैं।

साधारणतः के लिए भी अर्थ लिया जाता है। जब हम विद्यार्थी, पुरुषार्थ चतुष्टय जैसे शब्द बोलते हैं। तो गहरा अर्थ प्रयोजन, उद्देश्य, लक्ष्य का बोधक अर्थ होगा। सामान्यतः विद्यार्थ, धनार्थ, भोजनार्थ जैसे शब्दों के लिए काम चल जाता है।

एक विशेष अर्थ-कौटिल्य-अर्थशास्त्र भारतीय साहित्य की एक विशेष साहित्यिक रचना है। इस का आरम्भ करते हुए कहा है-

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति चार विद्यायें हैं। इन में से दण्डनीति प्रमुख है। शेष सारी विद्यायें इस पर निर्भर हैं, इस के अधीन हैं। मनुस्मृति का दण्ड-शास्त्रि प्रजाः सर्वाः दण्ड एवभिरक्षति दण्डं धर्म विदुः।

यहां भी दण्ड शब्द राजनीति, संविधान, न्याय व्यवस्था, धर्म अर्थ में है। प्राचीन शास्त्रों में राजनीति के स्थान पर राजधर्म शब्द प्रयुक्त किया है। कौटिल्यार्थ शास्त्र में नागरिक शास्त्र और समाज शास्त्र से भी अधिक विषयों, विभागों का वर्णन है।

आजकल केन्द्रीय सरकार के 40 से अधिक विभाग-मन्त्रालय हैं। अतः सरकार के लिए सर्वकार शब्द संस्कृत भाषा में चलता है अर्थात् जो सब कुछ कर सके। ऐसी ही स्थिति कौटिल्यार्थशास्त्र की भी है।

विशेष-प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग भी आ जाते हैं। जब वह सार्थक की सिद्धि को चाहना से चेष्टा करता है। तो अपने अधूरे ज्ञान के कारण या किसी विशेष की चालाकी के कारण। दुनिया रंग-रंग की है। सार्थक के स्थान पर निरर्थक बिना लाभ देने वाले। बर्ताव सामने आ जाते हैं। कई बार न चाहते हुए भी कुछ अनर्थकारक [अनर्थ-हानि-नुकसानदायक, कष्ट-दुःखद देने वाले] परिणाम फल भी सामने आ जाते हैं।

सामाजिक प्राणी होने के कारण अनेक बार दूसरों के साथ घटित घटनायें भी हमें सार्थक-निरर्थक-अनेक धर्म के आपस के अन्तर को समझा देती है।

सारांश-सार्थकता की बात, तो अपना स्वार्थ भी स्वयं समझाता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति, अपना धन-समय सार्थक बात पर ही लगाता है।

निरर्थक [लाभ न देने वाले] कार्य से बचता है। ऐसा कर्म कभी भी कहीं भी नहीं करता। हां, अनर्थक [= हानि, नुकसान, कष्ट, दुख देने वाले] कर्म किसी को कभी भी किसी के साथ नहीं करने चाहियें। यह मनुष्यता की मांग है, कि सर्वदा सर्वथा सार्थक व्यवहार ही करे।

## श्रद्धापूर्वक पूर्वजों की सेवा करना ही सच्चा श्राद्ध है

पितृपक्ष अर्थात् श्राद्ध को हमारे हिन्दू समाज में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इसके पीछे लोगों की मान्यता है कि श्राद्ध के दिनों में किए जाने वाले दान-पुण्य से, ब्राह्मणों को भोजन कराने आदि से मरे हुए पूर्वजों की तृप्ति होती है। जो इस संसार से चले गए हैं, मृत्यु का ग्रास बन गए हैं, उन लोगों की तृप्ति के लिए किया जाने वाला कर्म ही श्राद्ध कहलाता है। वर्तमान में इस श्राद्ध के नाम पर बहुत पाखण्ड भी फैल गया है। आईये आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के विचारानुसार श्राद्ध को जानने का प्रयास करें-

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 24 वें अध्याय में पञ्चमहायज्ञ की विषय वस्तु पर प्रकाश डाला है। पञ्चमहायज्ञ के ऊपर विचार करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तीसरे यज्ञ पितृयज्ञ के बारे में लिखते हैं कि- पितृयज्ञ के दो भेद हैं- एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। उनमें से जिस कर्म को करके विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं, सो तर्पण कहलाता है तथा जो उन लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करता है, उसी को श्राद्ध जानना चाहिए। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हीं में घटता है, मरे हुआओं में नहीं। क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसलिए उनकी सेवा नहीं हो सकती तथा जो उनके लिए कोई पदार्थ देना चाहे, वह भी उनको नहीं मिल सकता। इससे केवल विद्यमानों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने योग्य और सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध वेदों में कहा है। क्योंकि सेवा करने योग्य और सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने से यह सब काम हो सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए तर्पण आदि कर्म करने योग्य तीन हैं- देव, ऋषि और पितर। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी देव और मनुष्य के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि- दो लक्षणों के पाए जाने से मनुष्यों की दो संज्ञा होती है, अर्थात् एक देव और दूसरी मनुष्य। उनमें भेद होने के सत्य और झूठ दो कारण हैं। जो कोई सत्यभाषण, सत्यस्वीकार और सत्यकर्म करते हैं वे देव तथा जो झूठ बोलते, झूठ मानते और झूठ कर्म करते हैं, मनुष्य कहाते हैं। इसलिए झूठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होना सबको उचित है। इस कारण से बुद्धिमान लोग निरन्तर ही सत्य कहें, मानें और करें। क्योंकि सत्यव्रत आचरण करने वाले जो देव हैं, वे तो कीर्तिमानों में भी कीर्तिमान होके सदा आनन्द में रहते हैं। परन्तु उनसे विपरीत चलने वाले मनुष्य दुःख को प्राप्त होकर सब दिन पीड़ित ही रहते हैं। सत्यधारी विद्वान् ही देव कहलाते हैं।

जो सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाना है, यह ऋषिकर्म कहाता है और उससे जितना की मनुष्यों पर ऋषियों का ऋण हो, उस सबकी निवृत्ति उनकी सेवा करने से होती है। इससे जो नित्य विद्यादान, ग्रहण और सेवाकर्म करना है, वही परस्पर आनन्दकारक है और यही व्यवहार अर्थात् विद्याकोष का रक्षक है। विद्या पढ़ के सभी को पढ़ाने वाले ऋषियों और देवों की प्रिय पदार्थों से सेवा करने वाला विद्वान् बहुत पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। इससे आर्षेय अर्थात् ऋषिकर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आगे लिखते हैं कि- घर का पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवें कि- जो जो हमारे मान्य पिता, पितामहादि, माता मातामहादि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग, जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं, तुम लोग उनकी उत्तम-उत्तम जल, रोग नाश करने वाले उत्तम अन्न, सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो, जिससे कि वे प्रसन्न होके तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें।

क्योंकि ऐसा करने से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहोगे और ऐसा विनय सदा रखो कि हे पूर्वोक्त पितर लोगों! आप हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से तृप्त हूजिए और हम लोग जो-जो पदार्थ आप लोगों की इच्छा के अनुकूल निवेदन कर सकें, उन-उन की आज्ञा दिया कीजिए। हम लोग मन, वचन और कर्म से आप के सुख करने में स्थित हैं। आप किसी प्रकार का दुःख न पाईए। क्योंकि जैसे आप लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे ही हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिए कि जिससे हम लोगों को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो।

पितृ शब्द से सब के रक्षक श्रेष्ठ स्वभाव वाले ज्ञानियों का ग्रहण है। क्योंकि जैसी रक्षा मनुष्यों की सुशिक्षा और विद्या से हो सकती है, वैसी किसी दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञानचक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकार के नाश करने वाले हैं, उनको पितर कहते हैं। उनके सत्कार के लिए मनुष्यमात्र को ईश्वर की यह आज्ञा है कि वे उन आते हुए पितर लोगों को देखकर अभ्युत्थान अर्थात् उठ करके प्रीतिपूर्वक कहें कि- आईए! बैठीए! कुछ जलपान कीजिए और खाने पीने की आज्ञा दीजिए। पश्चात् जो-जो बातें उपदेश करने योग्य हैं, सो सो प्रीतिपूर्वक समझाईए कि जिससे हम लोग भी सत्यविद्यायुक्त होके सब मनुष्यों के पितर कहावें। परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह से जो शीलस्वभाव और सबको सुख देने वाले विद्वान् लोग अग्नि नाम परमेश्वर और रूप गुणवाले भौतिक अग्नि की अलग-अलग करने वाली विद्युत् रूप विद्या को यथावत् जानने वाले हैं, वे इस विद्या और सेवा यज्ञ में अपनी शिक्षा विद्या के दान और प्रकाश से अत्यन्त हर्षित होके हमारी सदा रक्षा करें। उन विद्यार्थियों और सेवकों के लिए भी आज्ञा है कि जब जब वे आवे वा जावें, तब तब उनको उत्थान नमस्कार और प्रियवचन आदि से सन्तुष्ट रखें तथा फिर वे लोग भी अपने सत्यभाषण से निर्वैरता और अनुग्रह आदि सद्गुणों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को उसी मार्ग में चलावें और लोभादि रहित होकर परोपकार के अर्थ अपना सत्य व्यवहार रखें। इस भेद से विद्वानों के दो मार्ग होते हैं- एक देवयान और दूसरा पितृयान। अर्थात् जो विद्यामार्ग है वह देवयान और जो कर्मोपासना मार्ग है वह पितृयान कहाता है। सब लोग इन दोनों प्रकार के पुरुषार्थ को सदा करते रहें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने पितृ यज्ञ के अन्तर्गत श्राद्ध और तर्पण पर प्रकाश डाला है क्योंकि हिन्दू समाज में श्राद्ध और तर्पण के नाम से भोली भाली जनता को लूटा जाता है। श्राद्ध और तर्पण के नाम पर बहुत सा पाखण्ड फैला हुआ है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लोगों को बताया कि श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप क्या है? वर्तमान समय में भी श्राद्ध के नाम पर बहुत सी भ्रांतियां लोगों के मन में हैं। महर्षि दयानन्द जी के अनुसार केवल जीवित माता पिता का ही श्राद्ध हो सकता है। इसलिए हमें मन से इस भ्रांति को निकाल देना चाहिए कि मरे हुए पितरों के नाम पर भोजन कराने से उन्हें तृप्ति मिलेगी। यह पाखण्ड है जिसके नाम पर लोगों को लूटा जाता है। जीवित माता-पिता की श्रद्धापूर्वक सेवा करने से उनका आशीर्वाद मिलता है। इसलिए श्राद्ध के सही स्वरूप को समझकर माता-पिता, गुरु-आचार्यों, विद्वान् सन्यासियों, महात्माओं की सेवा करें और उनके द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों को जीवन में धारण करें। यही श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप है।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

## आत्मा

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, ( राजस्थान )

आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व तक (सन् 1940) तक भारत के हर विद्यालयों में विज्ञान में यही पढ़ाया जा रहा था कि पदार्थ अनीश्वर है, कभी नष्ट नहीं होता है। इसके साथ ही यह भी पढ़ाया जा रहा था कि ऊर्जा भी कभी नष्ट नहीं होती है। पदार्थों का केवल रूप ही बदलता है रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों में, और इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध भी किया जाता है। इसी प्रकार यह भी प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जाता था कि ऊर्जा भी किसी भी परिवर्तन में नष्ट नहीं होती है। जब कि सन् 1875 में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेद भाष्य में ऋ. 1.16.2 मंत्र के भावार्थ में लिखा था कि जितना भी स्थूल पदार्थ जगत् में है वह विद्युत ऊर्जा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आइन्स्टीन ने यही बात सन् 1910 ई. में इस प्रकार कही, Mass Have No Value, Ue, Field is the only Reality.

फिर हम देखते हैं कि जगत् में केवल पदार्थ और ऊर्जा ही नहीं है वरन् वनस्पति, पशु-पक्षी, कीट पतंग, चौपाए और मनुष्य भी हैं जिनमें चेतनता का लक्षण पाया जाता है। इन्हें भूख-प्यास लगती है, दुःख और सुख अनुभव होता है, इनमें इच्छा होती है और उसे पूर्ण करने के लिए ये प्रयत्न भी करते हैं। मनुष्य तो चलते-फिरते है, उछल-कूद करते हैं, हंसते हैं, रोते हैं, ज्ञान की वृद्धि भी करते हैं। ऊर्जा और पदार्थ में तो ये गुण नहीं पाए जाते हैं। अतः इन गुणों का धारक पदार्थ या ऊर्जा से भिन्न है उसी को हम आत्मा कहते हैं। इस लेख में हम पक्ष-विपक्ष के तर्कों के आधार पर आत्मा की स्थिति जानने का प्रयत्न करते हैं।

स्वामी शंकराचार्य वेदान्त भाष्य में एक आत्मनः शरीरे भायात् (वेदान्त दर्शन 3.352) में लिखते हैं कि लोकायतिक लोग कहते हैं कि देह के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है। यद्यपि पृथ्वी आदि जड़ पदार्थों में अलग-अलग चेतनता नहीं पाई जाती तथापि कई चीजों को मिलाने से शराब बन जाती है और

उसमें नशे की शक्ति आ जाती है। उसी प्रकार जब जड़ पदार्थ मिलकर शरीर बन जाता है तब उसमें विज्ञान और चेतनता आ जाती है। आत्मा कोई ऐसी समर्थ सत्ता नहीं है जिसे शरीर से पृथक् माना जाए। प्रतिज्ञा यह है कि शरीर ही आत्मा है। जो जिसके रहने पर रहता है और न रहने पर नहीं रहता उसको धर्म कहते हैं। जैसे गर्मी और प्रकाश अग्नि के धर्म हैं। जो लोग चेष्टा चेतनता, स्मृति आदि को आत्मा का धर्म मानते हैं-वे भी देह में ही मानते हैं। इनको देह से अलग आत्मा के धर्म मानने का कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए देह का नाम ही आत्मा है, देह से अलग किसी आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

मनोवैज्ञानिक जेम्स ने भी यही बात इस प्रकार कही है-मन की जितनी भी अवस्थाएं हैं उन सबके साथ किसी न किसी प्रकार की शारीरिक क्रिया अवश्य होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि समस्त मानसिक व्यापार का कारण मस्तिष्क की क्रियाएं अथवा अवस्थाएं हैं। मस्तिष्क शरीर का एक अंग है इसलिए मानना पड़ता है कि चेतनता भी शरीर का एक अंश है ना कि आत्मा का।

**व्यतिरेक स्तद् भावा भावित्वान् न तु उपलब्धिवत्। वेदान्त 3.3.54**

अर्थात्-आत्मा देह से अवश्य भिन्न है क्योंकि देह के रहते हुए भी कभी-कभी चेतनता नहीं पाई जाती।

इस सूत्र पर स्वामी शंकराचार्य का भाष्य विचारणीय है।

**1. यदि देह भावे भावाद् देह धर्मत्वमात्मधर्माणां मन्येत ततो**

**देह भावेऽप्य भावाद् तद्-र्मत्वमेवैषां किं न मन्यते।**

अर्थात् देह आदि के साथ ही ज्ञानादि का व्यापार देखा जाता है इसलिए तुम मान लेते हो कि यह देह का ही धर्म है। तो यह बताओ कि देह रहते हुए भी तो ज्ञान का अभाव देखा जाता है फिर तुम यह क्यों नहीं मानते कि ज्ञान शरीर का धर्म नहीं है।

**2. प्राण चेष्टायस्तु सत्यपि**

**देहेमृतावस्थायां न भवन्ति।**

मरने पर भी शरीर तो रहता है परन्तु उसमें प्राणादि की चेष्टा नहीं होती।

**3. देह धर्माश्चरूपादयः परैष्युपलभ्यन्ते न त्वात्मधर्मा स्वैतन्यस्मृतादयः।।**

अर्थात् रूपादि देह के धर्म हैं वे मरने के उपरान्त भी रहते हैं। स्मृति आदि देह के धर्म नहीं हैं इसलिए मरने पर वे शरीर में नहीं पाये जाते हैं। यहां स्वामी शंकराचार्य ने शरीर और आत्मा के भेद बताने के लिए यह युक्ति दी है कि चेतनता शरीर का गुण होती तो शरीर में रहती। इससे सिद्ध होता है कि शरीर का धर्म नहीं है।

4. यदि चेतनता या ज्ञान पांच भूतों के मिलने से उसी प्रकार हो जाता है जैसे शराब में नशा तो यह भूतादि ज्ञेय है, ज्ञाता नहीं विषय है विषयी नहीं है। विषय स्वयं विषयी ही नहीं होता है, आग अपने को नहीं जलाया करती, नट अपने ही कंधे पर नहीं चढ़ सकता। रूप आदि दूसरों रूपों को या अपने रूप को नहीं देख सकते। इसलिए मानना पड़ता है कि जानने वाला कोई और है और इनसे अलग है। शराब के नशे के संबंध में मौलाना रूम ने अपनी मनसवी में लिखा है-

**बादा अज्ज मा मस्त शुद नै मा अज्जो।**

शराब में हमारे कारण नशा होता है न कि शराब के कारण हम में। जैन धर्म में भी इस विषय पर एक अच्छी बात कही है-शराब से नशा चैतन्य प्राणी में ही होता है। पत्थर पर शराब डालने से उसे नशा नहीं आता।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक रेने डेकार्टे ने गम्भीर चिंतन करने के बाद स्वीकार किया कि Cogito ergo sumg think therefore i exist.

अब विचार करें कि सोचने का क्या अर्थ है? जानने और करने का काम मन के द्वारा होता है वेदान्त दर्शन में भी जीवात्मा को विचार करने वाला, समझने वाला क्रियाशील एवं विज्ञान युक्त स्वीकार किया गया है। अनुभव द्वारा हम देख सकते हैं कि जीवात्मा में ज्ञान एवं क्रिया के

अतिरिक्त भोक्ता का गुण भी है। इसी से सुख-दुःख का अनुभव होता है। न्याय दर्शन में इच्छा, द्वेष प्रयत्न सुख-दुःख और ज्ञान को आत्मा का लिंग माना गया है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी. एफ. स्टाउट लिखता है-प्रत्येक मानसिक व्यापार के विश्लेषण में तीन वृत्तियां स्पष्ट होती हैं। ज्ञान वृत्ति, क्रिया वृत्ति और भोग वृत्ति परन्तु यह अभिन्न अंग है एक दूसरे से अलग नहीं मिलती है। फिर मनोवैज्ञानिक विचार के तीन भाग करते हैं-Willing, Feeling, Knowing. चित्त, मन और बुद्धि। वैदिक वाङ्मय में मन, बुद्धि और चित्त। इसके अतिरिक्त वैदिक वाङ्मय में एक चौथी वस्तु और है जिसे अहंकार कहते हैं। यह वृत्ति ही सिद्ध करती है कि मैं हूँ। मैं न तो सुख-दुःख क्रिया हूँ जो Feeling का विषय होता और न पदार्थ हूँ जो Knowing का विषय होता है न कोई क्रिया हूँ जो Willing मैं इन सबसे भिन्न हूँ। यह सब वस्तुएं परिवर्तनशील एवं अस्थायी हैं और मैं स्थायी, अपरिवर्तनशील हूँ। इस मैं की पहचान अन्तःकरण की उस चौथी वृत्ति से होती है जिसे अहंकार कहते हैं।

बर्कले ने ज्ञान के दो भाग किये विचार और अनुभूति। उसने कहा कि अन्य वस्तुओं के मन में विचार उठते हैं परन्तु अपने विचार नहीं उठते। उनकी अनुभूति होती है। जिसको बर्कले ने अनुभूति कहा उसी को वेद में अहंकार कहा है। अन्य वृत्तियां मन, बुद्धि और चित्त का विषय है परन्तु अहंकार वृत्ति अपने अस्तित्व का ज्ञान देती है।

अब तक यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पुरुष को किसी न किसी अंश में अपनी प्रतीति होती है वह अपने को कर्ता भोक्ता और ज्ञाता मान लेता है इसी को आत्मा कहते हैं।

ए मेन्युअल ऑफ साइकोलोजी में स्टाउट लिखता है-'आत्मा के गुण स्पष्ट रूप से अलग प्रतीत होते हैं। इनमें से मुख्य वे हैं जो शारीरिक अनुभूति से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु यदि हम यह कहें कि आत्मा शरीर

( शेष पृष्ठ 7 पर )

## “ब्रह्म को ब्रह्म से ही जानें

ले.-रामफल सिंह आर्य C-18 आनन्द विहार उत्तम नगर नई दिल्ली-110059

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? दीर्घ काल तक दुःखों से दूर रह कर शुद्ध सुख को प्राप्त करना। शुद्ध सुख से क्या अभिप्राय है? केवल सुख जिसमें किंचित मात्र भी दुःख मिला हुआ न हो। क्या ऐसा सुख कहीं होता भी है, जिसमें दुःख मिला हुआ न हो? संसार में हम कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं देखते जिसमें दुःख मिला हुआ न हो। हां! यह बात ठीक है कि सांसारिक पदार्थों में भी सुख है और यह भी सत्य है कि किसी भी पदार्थ में शुद्ध सुख नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील और नाशवान है। और जो पदार्थ स्वयं नाशवान है वह कभी भी स्थायी और शुद्ध सुख देने वाला नहीं हो सकता। तो विचार करना चाहिये कि ऐसी कौन सी वस्तु या पदार्थ है जिसमें नितान्त सुख ही होवे। वह पदार्थ ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। केवल ईश्वर ही ऐसा है जिसमें केवल और केवल सुख है, आनन्द है। अतः यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म को प्राप्त करना है। प्रश्न होता है कि क्या वह अप्राप्त है जो प्राप्त करना पड़े? अप्राप्त तो वह होता है जो कि दूर हो। तो क्या वह दूर है? किसी अन्य स्थान पर हैं? नहीं! यहां अप्राप्त से अभिप्राय यह है कि उसमें और हम में ज्ञान की दृष्टि से दूरी है, देश या काल की दृष्टि से नहीं। है तो वह हमारे अत्यन्त निकट, लेकिन हम उसे जानते नहीं हैं इसलिये उसको जानना ही उसे प्राप्त करना है। अगला प्रश्न होता है कि उसे जानें कैसे? उत्तर है उपनिषद से। क्या उपनिषदों की पुस्तकें पढ़ने से वह जाना जायेगा? जी नहीं, उपनिषद का अर्थ है उप+नि+षद अर्थात् निश्चय पूर्वक उसके समीप बैठ जाने से। यह ठीक है कि ईश्वर के परम भक्त महर्षियों ने अपने शिष्यों को जो उपदेश ईश्वर के विषय में दिये, उनका नाम भी उपनिषद पड़ गया क्योंकि दोनों ही गुरु और शिष्य निश्चयपूर्वक एक दूसरे के समीप ही तो बैठे थे। निःसन्देह इन पुस्तकों में ब्रह्म विषयक अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। जिस पर हम चिन्तन करके, वैसा व्यवहार करके ईश्वर की ओर पग बढ़ा सकते हैं और आर्ष विद्या से पूर्ण ये ग्रन्थ हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं, ये हमारी अमूल्य धरोहर है। ज्ञान का भण्डार है। तो आइये चलते हैं उपनिषदों की ओर। ब्रह्म विद्या की कौन सी ग्रन्थियां खोल रहे हैं ऋषि। बृहदारण्यक उपनिषद के चतुर्थ

अध्याय में वर्णन आता है कि एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य विदेहराज महाराज जनक के पास गये तो महाराज जनक ने पूछा कि हे ऋषिवर आप कैसे पधारे? क्या आपको कुछ चाहिये? या अति सूक्ष्म तत्वों का विवेचन कीजियेगा? तो महर्षि बोले कि दोनों ही बातें होगी। राजन! पहले आप यह बताइये कि अब तक आप के गुरुओं ने आप को क्या सिखाया? राजा ने कहा कि जित्वा शैलिनी ने मुझे यह उपदेश दिया है कि वाणी ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य ने कहा कि जैसे कोई अच्छे माता पिता और गुरु से शिक्षा पाया हुआ उपदेश दे वैसे ही शैलिनी ने आपको यह उपदेश दिया है। यह ठीक भी है, जो बोल नहीं सकता उसका संसार में क्या बन सकता है? परन्तु क्या वाक्-ब्रह्म के आयतन तथा प्रतिष्ठा के विषय में उसने आपको कुछ बताया? राजा ने कहा कि इसके विषय में तो कुछ नहीं बताया। ऋषि ने कहा कि तब तो उसने एक पाठ ब्रह्म का ही उपदेश दिया, चतुर्थांश का ही उपदेश किया। इसके अतिरिक्त ब्रह्म के आयतन, उसकी प्रतिष्ठा और उसकी उपासना का वर्णन तो रह ही गया। राजा ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! फिर आप ही सर्वांश ब्रह्म का उपदेश दीजिये। याज्ञवल्क्य ने कहा, पिण्ड में वाणी मानो ब्रह्म का आयतन है, उसका शरीर है, ठिकाना है, ब्रह्माण्ड में आकाश मानो उसकी प्रतिष्ठा है, इस विशाल आकाश में मानो वही प्रतिष्ठित हो रहा है, उससे फैल रहा है, ठिकाना किये बैठा है। पिंड की वाणी में भी वही सिमटा बैठा है। ब्रह्मांड के आकाश में भी वही फैला बैठा है। वह ब्रह्म प्रज्ञा रूप है-इसी रूप में उसकी उपासना करनी चाहिये। प्रज्ञा रूप ब्रह्म जो आकाश की तरह सर्वत्र प्रतिष्ठित है, वाणी में आकर बैठा हुआ है। राजा ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! प्रज्ञा से आपका क्या अभिप्राय है? याज्ञवल्क्य ने कहा प्रज्ञा-प्रकर्ष ज्ञान, वाणी से ही तो प्रकट होती है, इसलिये वाणी ही प्रज्ञा है। हे सम्राट! वाणी से ही बन्धु पहचाना जाता है, वाणी से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, व्याख्यान इष्ट, हुत, भोजन दान, जल दान, इहलोक, परलोक सब जाने जाते हैं। हे सम्राट! वाणी ही परम ब्रह्म है। जो इस रहस्य को जानता हुआ वाणी द्वारा प्रज्ञा-ब्रह्म की उपासना करता है, उसका साथ वाणी नहीं छोड़ती,

सब प्राणी उसकी रक्षा करते हैं, वह स्वयं देव होकर देवों में जा विराजता है। वाग्वै सम्राट परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्य-भिरक्षन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुणस्ते।”

यहां तक का जो उपदेश महर्षि प्रवर द्वारा विदेहराज को दिया गया है उसमें उन्होंने वाणी में ही ब्रह्म के प्रतिष्ठित होने की बात कही प्रत्युत वाणी को ही साक्षात् ब्रह्म कह दिया है। जो व्यक्ति वाणी के इस महत्त्व को नहीं जानता, वह ब्रह्म को भला कैसे जान सकता है? वास्तव में वाणी का खेल ही इतना विचित्र है कि यह बिल्कुल बिगड़े हुए कार्य को भी सवार देती है और सिद्ध हुए कार्य को भी बिगाड़ देती है। जब यह वाणी ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाती है तो संसार में प्रेम रस को प्रवाहित कर देती है। दुखियों, आर्तों, पीड़ितों, शोषितों के घावों पर करुणा का लेप लगा कर उनकी पीड़ा का हरण कर लेती है। वाणी केवल वही व्यक्ति बोल सकता है जो सर्वत्र अपने आप को ही देखता है, अनुभव करता है। तभी तो कहा है कि वह स्वयं देव होकर देवों में जा विराजता है। ‘देवो भूत्वा देवानप्येति’। जिस समय हमारी दृष्टि इतनी विशाल हो जायेगी तो अपने पराये का भेद भी जाता रहेगा। उस समय जो कुछ हमारी वाणी से निकलेगा वह सब के लिये एक समान लाभकारी होगा। हमें इसी रूप में वाणी का सेवन करना चाहिये और इसी ओर अपने अभ्यास को ले जाना चाहिये। इस विशालता के दर्शन यदि करने हो तो महर्षि दयानन्द जी महाराज के उन शब्दों में कीजिये जो कि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखे हैं। वे लिखते हैं-“यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देश वा मतोनन्ति वालों के साथ भी बर्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य हैं। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते हैं और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता। परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। जो बलवान होकर

निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानि मात्र करता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।” यह है वाणी में ब्रह्म की प्रतिष्ठा और ब्रह्म में प्रतिष्ठित वाणी। यह वाणी उसी के मुख से निकल सकती है जिसने संसार में व्यापक उस परम सत्ता ईश्वर को जान लिया हो। ईश्वर का नाम ब्रह्म है ही इसलिये कि वह सबसे बड़ा है। अतः उस बड़े को जानने के लिये हमें अपनी वाणी भी बड़ी बनानी होगी, वाणी तब बड़ी बनेगी जब हमारा हृदय विशाल होगा, हृदय तब विशाल होगा जब हमारे विचार एवं दृष्टि विशाल होगी और दृष्टि तब विशाल होगी जब हम उस विशाल की विशालता को कहीं पर देखेंगे। उदाहरण के लिये मेरी आंख मेरी अपनी है, इसी से मैं सब कुछ देखता हूं, सारे व्यवहारों एवं कार्यों का सम्पादन इसी आंख के द्वारा करता हूं। मेरी यह आंख व्यर्थ है यदि प्रकाश न हो। प्रकाश का साधन क्या है? सूर्य है। सूर्य मानो उस विशाल ब्रह्म की आंख है, उसी से हमारा सम्बन्ध है। मैं अपनी आंख को अपनी आंख कहता हूं और सूर्य को भी कह सकता हूं कि यह मेरी आंख है या सूर्य मेरा है। मेरा पड़ोसी भी सूर्य को अपना कह सकता है, भाई भी, नगर के अन्य सभी लोग भी और एक क्षुद्र सा जीव कुत्ता, बन्दर या चिड़िया भी कह सकती है कि सूर्य उसका है। यह है दृष्टि की विशालता का विस्तार। प्रत्येक की पृथक-पृथक आंख का सम्बन्ध एक सूर्य से जाकर स्थापित हो गया और सभी एक में प्रतिष्ठित हो गये।

इसी प्रकार से वाणी को भी समझ लीजिये। हमने अपने एक पहले लेख ‘अवध्या गाय का वध मत करो,’ में लिखा था कि वाणी ही देवों की वह गाय है जो रूद्रों की माता है, वसुओं की पुत्री और आदित्यों की बहन है। भाव यह है कि ये सभी देवता वाणी में ही प्रतिष्ठित हैं। वाणी का भी सम्बन्ध यदि आप देखना चाहेंगे तो अन्त में जाकर, अग्नि से जुड़ जाता है। यह अग्नि भी अन्य कोई नहीं, कोई भौतिक अग्नि न होकर ईश्वर की वह शक्ति है जो वायु के स्पर्श से शब्द को उत्पन्न कर देती है। दूसरे शब्दों में स्वयं ईश्वर ही वाणी में आकर इसका आधार बना हुआ है। तभी तो ऋषि याज्ञवल्क्य कह रहे हैं कि वाणी ही ब्रह्म है। जो शक्ति मेरी वाणी या वाक् शक्ति को प्रेरित कर शब्दों को

### पृष्ठ 5 का शेष—“ब्रह्म को ब्रह्म से ही जानें

व्यक्त करवा रही है, वही अन्य मनुष्यों में वैसा ही व्यवहार कर रही है। अर्थात् अन्त में जाकर, मूल में जाकर हम सब एक विशाल में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

इस विशालता के रहस्य को जो जान लेता ही वह देव हो जाता है। देवता का दान ही यह है कि वह अपने पास आने वाले के ऊपर अपना सर्वस्व उडेल कर उसे अपना ही स्वरूप दे देता है। राक्षस छुपा कर रखते हैं, संचित करके रखते हैं, देवता दान कर देते हैं, प्रकट कर देते हैं। संचित करने वाला दुर्गन्ध उत्पन्न करता है और प्रकट करने वाला सुगन्ध। यज्ञ में डाला हुआ पदार्थ सुगन्ध इसीलिये देता है कि वह अपने भीतर संचित शक्ति को प्रकट कर देता है। आप कहेंगे कि वाणी के बारे में लिखते-लिखते आप न जाने किस ओर चल पड़े तो चलिये अपने चर्चित विषय की ओर ही चलते हैं।

हमने अपने इस लेख को शीर्षक दिया है कि ब्रह्म को ब्रह्म से ही जाने। बहुत से लोग यह शंका कर दिया करते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। यह शीर्षक उनकी भी शंका का समाधान करता है। अभी वाणी का ही प्रसंग चल रहा है हम उसी पर विचार करेंगे। ठीक है भाई! आप ब्रह्म अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते, मत मानिये, परन्तु अपनी वाणी को, तो मान रहे हो जो कि प्रत्यक्ष ही है। यह वाणी तुम्हें किसने दी? वे लोग उत्तर दे सकते हैं कि यह तो हमारे मुख में स्थित जिह्वा की देन है। जो जिह्वा वाणी है? जी नहीं, यह तो वाणी नहीं हो सकती। तो फिर यह कहां से आ रही है? वे कह सकते हैं कि यह इस जिह्वा से ही उत्पन्न हो रही है। तो क्या जिह्वा से यह स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है? क्या वह बच्चा जो अभी बहुत छोटा है बिना बुलाये या सिखाये ही भाषा बोलने लग जाता है? यदि उसका लालन पालन करने वाले कुछ भी बात उसके सामने न बोले तो क्या वह कोई भाषा सीख पायेगा? बिल्कुल नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि भाषा बिना सिखाये नहीं आती। तो मनुष्य को उस समय, प्रारम्भ में किसने भाषा सिखाई? उन्हें वाणी किसने दी? कुछ प्रगतिवादी यह कह सकते हैं कि धीरे-धीरे विकास हुआ, परन्तु यह उत्तर इतना लचर और निरर्थक है कि कोई भी बुद्धिमान इस पर विश्वास नहीं कर सकता। यह वास्तव में उत्तर नहीं है, एक छल है जिसे विकासवादियों ने विकसित किया है। उचित उत्तर यह है कि आदि में ईश्वर द्वारा ही यह सब कुछ दिया गया, सिखाया गया।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेना-वच्छेक्षत् (योग. १/१६) वही ईश्वर गुरुओं का भी गुरु अर्थात् आदि गुरु है जिसको काल का भी बन्धन नहीं है। अन्य मनुष्य गुरुओं का तो काल के कारण छेदन हो जाता है परन्तु ईश्वर का नहीं होता। और फिर जिह्वा तो गूगों में भी है, उसमें वाणी क्यों नहीं होती?

हमारे मन में ज्ञान विज्ञान भरा हुआ है, हम कई विषयों के जानने वाले हों, उसका दूसरे व्यक्ति को कैसे पता चलेगा? हम आने वाली सन्तानों तक अपना यह ज्ञान कैसे पहुंचा पायेंगे? सीधी सी बात है, वाणी के माध्यम से। ईश्वर विषय का यदि किसी को ज्ञान करवाना है तो हम कैसे करवा सकेंगे? वाणी के माध्यम से, उपदेश द्वारा। अब यह वाणी जो कि ब्रह्म विद्या का व्याख्यान कर रही है किसमें प्रतिष्ठित है? ब्रह्म में। बस यही बात महर्षि याज्ञवल्क्य कह रहे हैं। ब्रह्म को यदि जानना है तो ब्रह्म से ही जाना जा सकता है, अन्य कोई साधन नहीं है। संध्या को भी हम ब्रह्म यज्ञ कहते हैं। ओ३म् यज्ञ, ईश्वर, यज्ञ, भगवान यज्ञ क्यों न कहा गया? ब्रह्म यज्ञ ही क्यों? इसलिये कि ब्रह्म प्रत्यक्ष तो है नहीं कि इन्द्रिय गोचर हो सके। उसकी कृति को देखकर ही पता चलता है कि इसका कर्ता कोई अवश्य है। ब्रह्माण्ड को देख कर उसके बनाने वाले ब्रह्म का पता चलता है इसीलिये उसे ब्रह्म यज्ञ कहा गया है। यदि हम अपने शरीर में देखना चाहते हैं तो वाणी को देख लें और यदि ब्रह्माण्ड में देखना है तो आकाश को देख लें। यह प्रश्न होता है कि वाणी और आकाश का क्या सम्बन्ध है? बहुत घनिष्ठ, शब्द किसका गुण है? आकाश का। और वाणी शब्द का उच्चारण करती है या नहीं? करती है। किसके माध्यम से? आकाश के। कुछ समझ में आया कि वाणी का सम्बन्ध आकाश से क्यों जोड़ा गया? अब और क्या स्पष्टीकरण चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्य ने केवल नाम बदला है, मूल भावना नहीं। यही तो ऋषि का ऋषित्व है। इसी को वाक् ब्रह्म का आयतन अर्थात् विस्तार कह दिया है। इससे पहले कि हम इस विषय में और आगे बढ़ें आईये देखें कि वेद में वाणी के बारे में क्या कहा गया है?

**इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।**

**ययैव ससृजे तयैव शान्तिरस्तु नः॥ (अथर्व. १६।६।३)**

अर्थात् हे ईश्वर हम वाणी का प्रयोग शान्ति स्थापित करने में ही करें।

वाणी देवता है, हम इसका प्रयोग कल्याण हेतु ही करें, इसका दुरूपयोग न करें, हमारी वाणी ज्ञान से तीक्ष्ण हो। जैसे किसी अस्त्र शस्त्र को पत्थर पर घिस कर तीक्ष्ण किया जाता है, वैसे ही यहां कहा गया कि हमारी ब्रह्मसंशिता हो अर्थात् ब्रह्म से ही उसे तीक्ष्ण किया जाना चाहिये अर्थात् उसे ब्रह्म के साथ जोड़ दिया जाना चाहिये। यही कल्याण का मार्ग है। जिस व्यक्ति का अपनी वाणी पर नियन्त्रण नहीं है वह क्या कभी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि ईश्वर प्राप्ति के लिये मान लीजिये कि वह किसी गुरु के पास चला भी गया तो गुरु कुछ कहे और वह कुछ दूसरा ही उत्तर दे या कार्य करे तो क्या लक्ष्य सिद्ध हो पायेगी? मान लीजिये कि एक व्यक्ति रोगी हो गया, अब वह गया वैद्य के पास। वैद्य ने उसे औषधि दी, खाने की विधि बतला दी और साथ ही यह भी बतला दिया कि कौन-कौन सी वस्तुएं खानी हैं और कौन-कौन सी नहीं। लेकिन घर आकर उसने न तो औषधियां ही उचित प्रकार से सेवन की और न ही पथ्यापथ्य का ध्यान रखा तो लाभ कुछ भी नहीं होगा। उल्टे हानि अधिक हो सकती है। इसीलिये कहा कि वाणी ब्रह्मसंशिता हो। जो कुछ सुने वैसा ही सावधानी से करें भी।

छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम प्रपाठक के दूसरे खण्ड के प्रथम मन्त्र में कहा गया है:

वाग्वान नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेद। यद्वै वांनाभविष्यन् धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन् सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतस्वर्वं विज्ञाप्यति वाचमु-पास्वेति॥

अर्थात् वाणी नाम से बड़ी है, ऋग्वेदादि सभी विद्याओं को जिन्हें तुमने पढ़ा है, वाणी ही जतलाती है। धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु-असाधु, सहृदय असहृदय इन सबका ज्ञान भी वाणी ही देती है। यदि वाणी न होती तो धर्म अधर्म का ज्ञान न होता, न सत्य-असत्य का ज्ञान होता, न अच्छे बुरे का ज्ञान होता। वाणी ही इन सबका ज्ञान कराती है, इसलिये तुम वाणी की उपासना करो। यद्यपि नारद जी को अगले उपदेश में और भी आगे बढ़ने की बात कही गई है परन्तु वाणी का महत्त्व तो कहा ही गया है। छान्दोग्य में भी अगले उपदेश का भाव यही है कि ब्रह्म के एक-एक कार्य पर विचार करते चलो और आगे बढ़ते रहो। उसका ज्ञान तो उसी के कार्य से हो सकेगा। वैज्ञानिक एक-एक पदार्थ को उलट पलट कर, तोड़ कर, जांच परख कर देखता चलता है। वह जितना अधिक अपने

अनुसन्धान में आगे बढ़ता है। उतना ही अधिक पदार्थ के स्वरूप को जानता जाता है। और आश्चर्यचकित होता जाता है। बाह्य रूप से देखने पर जो कुछ दिखाने देता था, भीतर जाने पर उससे बिल्कुल भिन्न दिखाई दिया और आश्चर्यजनक भी। ऐसा क्यों हुआ? विस्तार के कारण। किसके विस्तार के कारण? पदार्थ तो उतना ही था फिर विस्तार किसका हुआ? सूक्ष्म अवयवों का, परमाणुओं का। ज्यों-ज्यों सूक्ष्म होते गये विस्तार होता गया। यहा तक कि अन्य पदार्थों के साथ भी उनका कुछ न कुछ सम्बन्ध जुड़ता गया। जैसे सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया एक पदार्थ में भी, वैसी ही अन्यो में भी दिखने लगी। एक पदार्थ से दूसरा पदार्थ जाना जाने लगा। जैसे एक पदार्थ के परमाणु गति कर रहे थे, बिल्कुल ठीक वैसे ही दूसरे के। यह क्या है? आप इसे कुछ भी नाम दे सकते हैं, परन्तु हम इसे ब्रह्म से ब्रह्म को जानना ही कहेंगे। यही वह परम सत्य है कि जिसके लिये यह सारा संसार गति कर रहा है अपितु यं कहना चाहिये कि जिसमें यह सब कुछ स्थित है। यह ऐसा सत्य है कि जिसका कोई भी व्यक्ति खण्डन नहीं कर सकता। वैज्ञानिक भले ही ब्रह्म को न माने, परन्तु वह पदार्थों के नियम को स्वीकार करता है। हमें और क्या चाहिये? जब नियम को स्वीकार कर लिया तो नियामक की स्वीकृति स्वतः ही हो जाती है। नियम कभी भी नियामक के बिना नहीं बन सकता।

अब ऋषि याज्ञवल्क्य की तीन बातें शेष रह जाती हैं—ब्रह्म का आयतन, प्रतिष्ठा और उपासना। यदि ध्यान से देखेंगे तो उपरोक्त वर्णन में तीनों ही आ चुकी हैं। आयतन का अर्थ है उसका विस्तार, फैलाव। वह सब में है, सब उसमें हैं वाणी को विशेष रूप से इसलिये कहा कि वह व्याख्यान करती है। मन में स्थित वेद ज्ञान का क्या मूल्य रह जाता यदि वाणी उसका वर्णन न करती। मन के सभी भावों को हर्ष, शोक, ममता, प्रेम, घृणा, क्रोध सब कुछ उसी के द्वारा प्रकट होता है। प्रतिष्ठा का अर्थ उसकी स्थिति है। जब उसको सर्वत्र उपस्थित जान लिया तो फिर उपासना में कुछ भी देर नहीं लगती। वह अप्रत्यक्ष होता हुआ भी प्रत्यक्ष हो जाता है और ऐसा होते ही मनुष्य देव कोटि में आ जाता है, ऊपर उठ जाता है। आनन्द के महासागर को वह प्राप्त कर लेता है और उसे नितान्त सुख जिसमें किञ्चित मात्र भी दुःख मिला हुआ नहीं है, मिल जाता है। यही उपनिषद की सिद्धि है, यही मानव जीवन परम लक्ष्य है।

### पृष्ठ 4 का शेष-आत्मा

ही है तो हमें इतना और जोड़ देना चाहिए कि भीतरी अनुभूति से युक्त शरीर न कि वह शरीर जो विज्ञान की परीक्षा का विषय है।'

आधुनिक शरीर वैज्ञानिक बताते हैं कि जिसको साधारण भाषा में मस्तिष्क कहा जाता है उसके दो भाग हैं। एक को केन्द्र भाग Central Part और दूसरे को Peripheral Part या प्रान्तस्थ अंग। शरीर पर शासन केन्द्र भाग से होता है (प्रान्तस्थ) अंग उसके अनुकूल कार्य करते हैं। केन्द्र के अंग दो हैं— एक सुषुम्ना और दूसरा मस्तिष्क। सुषुम्ना एक नाड़ी है जो रीढ़ की हड्डी में रहती है और उसका ऊपरी भाग कपाल में जाकर चौड़ा हो जाता है जिसको सुषुम्ना शासक कहते हैं। स्नायु संस्थान के अन्य भाग जो कपाल (Cranium) के भीतर हैं वे हैं—(1) लघु मस्तिष्क ) Cerebellum (2) मध्यम मस्तिष्क Mid Brain (3) बृहत् मस्तिष्क Cere Brum स्नायु संस्थान का प्रान्तस्थ भाग वह है जो केन्द्र अंग को इन्द्रिय गोलक आदि शरीर के अन्य भागों से मिलाता है।

अब देखना यह है कि बृहत् मस्तिष्क और स्नायु संस्थान के अन्य भागों में क्या सम्बन्ध है? बृहत् मस्तिष्क जो सोचने का मुख्य उपकरण है वह कैसे कार्य करता है? प्रान्तस्थ अंग और केन्द्र अंग के बीच में लाखों अत्यन्त महीन तन्तु हैं। शिरा कोष्ठों को मिलाने वाले तन्तु दो प्रकार के हैं—अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी तन्तु बाहर की चीजों के संस्कारों को केन्द्र अंग तक ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञान तन्तु कहते हैं। बहिर्मुखी तन्तु केन्द्र अंग से चल कर शरीर के क्रिया करने वाले अंगों को प्रेरित करते हैं इनको प्रेरणा तन्तु कहते हैं। मान लो आपके पैर में कांटा लगा। कांटे के लगते ही आपने पैर को हटा कर ऊपर किया और हाथ कांटे को निकालने लग गया। यहां मस्तिष्क ने क्या किया है? जब पैर में कांटा चुभने लगा तब ज्ञान तन्तुओं ने केन्द्र अंग को सूचना दी कि कांटा लग रहा है तब केन्द्र ने प्रेरणा तन्तुओं को सूचना दी कि पैर को ऊपर उठाओ और हाथ को सूचना दी

कि कांटा निकालेगा। यह कार्य इतना शीघ्र हुआ कि भिन्न-भिन्न क्रियाओं को भेद का पता न चल सका। परन्तु भेद अवश्य है। यहां एक बात और ध्यान में रखनी है कि ज्ञान तन्तु और प्रेरणा तन्तु दोनों मस्तिष्क के एक ही भाग में नहीं पहुंचते हैं। इन सबके लिए मस्तिष्क में विभिन्न भाग बंटे हुए हैं। चक्षु इन्द्रिय से आने वाले ज्ञान तन्तुओं का अलग कमरा है, श्रोत्र इन्द्रिय से आने वाले ज्ञान तन्तुओं के लिए अलग कमरा है। यही स्थिति प्रेरणा तन्तुओं की है। इन सब ज्ञान तन्तुओं से प्राप्त सूचना को एकत्रित कर मस्तिष्क द्वारा प्रेरणा तन्तुओं को प्रेरित करने का कार्य जो वस्तु करती है उसी को हम आत्मा के नाम से पुकारते हैं।

स्टाउट का कहना है कि शरीर में कोई ऐसा अंग नहीं है कि जो विचारधारा करने वाली सत्ता के ऐक्य और ऐक्य ज्ञान की बराबरी कर सके।

हमारे विचार में ऐक्य ऐक्य है उसके भाग नहीं किए जा सकते। परन्तु शरीर, मस्तिष्क अथवा भौतिक संसार के अनन्त भाग हो सकते हैं। जितने टुकड़े करते जाओ उतने ही स्वतंत्र अणु बनते जाएंगे परन्तु विचारों के इस प्रकार के भाग नहीं हो सकते। हम अपने 'मैं' को कई खण्डों में नहीं बांट सकते हैं। हमारी अनुभूति यही बताती है कि हम 'एक' और अखण्ड सत्ता हैं। इसके अनुकूल शरीर में कोई अंश है वही नहीं। मस्तिष्क में जो कोई व्यापार होता है वह संज्ञा आदि मानसिक विचारों से भिन्न है इसलिए स्वाभाविक रूप से यह मानना पड़ता है कि इस संज्ञान के लिए कोई अन्य सत्ता है। विज्ञान का यह नियम है कि भौतिक परिस्थितियों में से भौतिक परिणाम ही निकलते हैं।

आत्मा भौतिक पदार्थों से अलग एक सत्ता है जिसके कारण से अभौतिक परिणाम निकलते हैं। हैनरी डूमण्ड कहते हैं, भौतिक वादियों ने बड़ी भूल की है कि वह सृष्टि की व्याख्या परमाणु की ही दृष्टि से करते हैं अर्थात् जो मशीन इस संसार को चला रही है उसको केवल मशीन मान कर ही व्याख्या करते हैं, वे भूल जाते हैं कि जहाज पर जहाज के अतिरिक्त मुसाफिर भी हैं और मुसाफिरों के साथ एक

### शोक प्रस्ताव

आर्य समाज कमालपुर होशियारपुर के प्रधान एवं भूतपूर्व अध्यक्ष गणित विभाग सरकारी कालेज होशियारपुर के प्रो. नवल किशोर शर्मा जी का आज दिनांक 15 सितम्बर 2020 को प्रातः देहान्त हो गया। वह कुछ समय से रूग्ण चल रहे थे। उनके इस प्रकार असमय इस संसार से चले जाने से परिवार पर अकस्मात् वज्रपात हुआ है।

आर्य समाज के सभी सदस्य प्रो. नवल किशोर जी के निधन पर गहरा शोक व्यक्त करते हैं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करे तथा शोक संतप्त परिवार को इस असहनीय दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

—यशपाल वालिया

### पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज माडल टाउन...

कोई किसी के अधिकारों का हनन नहीं करेगा। संसार से लड़ाईयों और युद्धों की विभीषिका मिट जाएंगी। सर्वत्र शान्ति और प्रेम का साम्राज्य छा जाएगा। धरती स्वर्ग बन जाएगी और उस पर रहने वाले लोग देवता बन जाएंगे। सब लोगों के घरों में सुख-समृद्धि और आनन्द की गंगा बहने लगेगी। इस मौके पर श्री अजय महाजन, श्री जोगेन्द्र भंडारी, श्री ओम प्रकाश, श्री जगदीश शर्मा, लता राय, नन्दिता आर्य, गुलशन अरोड़ा इत्यादि मौजूद थे।

—अरविन्द घई प्रधान आर्य समाज

### मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन

आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर के तत्वावधान में दिनांक 13-09-2020 दिन रविवार को ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना के मन्त्रों की प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में अमृतसर की अलग-अलग समाजों से 21 प्रतियोगियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता का लक्ष्य था, मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण। सभी प्रतियोगियों ने शुद्ध मन्त्रोच्चारण किया। इस प्रतियोगिता में एस. एल. स्कूल की संस्कृत अध्यापिका गौतमी जी, डी.ए.वी. स्कूल की संस्कृत अध्यापिका नीरू मल्होत्रा तथा शास्त्री जी ने जज की भूमिका निभाई। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान रेणु घई, सुनीता अरोड़ा, दूसरा स्थान इन्दिरा अरोड़ा, विजय अरोड़ा, डा. ऋचा सचदेवा तथा तीसरा स्थान श्रुति अरोड़ा ने प्राप्त किया। सभी विजेताओं को आर्य समाज शक्ति नगर की ओर से बहुत-बहुत बधाई दी गई।

—मुकेश आनन्द उपमन्त्री आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर

कप्तान भी है और कप्तान का कोई उद्देश्य भी है। धार्मिक लोग भी यह भूल जाते हैं कि मुसाफिरों से जहाज को अलग करना गलत है। भौतिक विज्ञान में निरीक्षण परीक्षण, वर्गीकरण, निर्वाचन, आदि अनेक क्रियाएं समाविष्ट हैं।

ये सब क्रियाएं बिना चेतन शक्ति के संभव नहीं हैं। मस्तिष्क व्यापार को बिना चेतन शक्ति (आत्मा) के अस्तित्व को माने सिद्ध नहीं किया जा सकता। डा. स्टीफल डब्ल्यू हाकिंग ने अजीब से सजीव की उत्पत्ति की बात कही है परन्तु अधिकांश वैज्ञानिक उससे सहमत नहीं हैं। डा. मरलिन ब्रक्स लिखते हैं, पास्यचर के समय से ही यह वैज्ञानिक तथ्य स्वीकार किया जा रहा है कि किसी अजीव द्रव्य से जीव की उत्पत्ति नहीं की जा सकती है। विविध परिस्थिति जन्य अवस्थाओं में पैदा करने के लिए हमारी प्रयोग शालाएं प्रोटोप्लाज्म के

कुछ संघटक भागों को तैयार करने में सफल हो गई हैं परन्तु जीवों को पैदा करने में नहीं। ठीक अनुपात में समस्त आवश्यक तत्वों के अकस्मात् घटित होने की गणितीय संभावना नहीं है। प्रोटोप्लाज्म में प्रोटीन का एक कण बनाने के लिए विभिन्न अनुपातों में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और सल्फर के 40,000 अणु काम में आते हैं। ये प्रकृति में विभिन्न मात्रा में फैले हुए हैं। ये आपस में कितने बार टकराने से प्रोटीन का एक बड़ा कण बन जावे। इस पर पृथ्वी के एक गणितज्ञ ने काम किया है। उसके अनुसार ये पांचों तत्व 10273 वर्ष लेंगे। साथ ही सृष्टि की कुल ऊर्जा की तीन गुणी ऊर्जा काम में आवेगी। फिर भी वह चेतना रहित ही होगी। इससे सिद्ध हुआ कि चेतना या जीव द्रव्य अकस्मात् नहीं बन गया है। वास्तव में जीवन की स्वतंत्र सत्ता आत्मा की आवश्यकता है।

# विश्व में हिन्दी के बढ़ते कदम: प्रेम भारद्वाज

## बी.एल.एम.गलर्ज कालेज नवांशहर में हिन्दी दिवस पर वेबिनार



बीएलएम गलर्ज कालेज नवांशहर में हिन्दी दिवस के अवसर पर वेबिनार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर में हिन्दी विभाग के डा. सुनील कुमार, आर.के.आर्य कालेज नवांशहर के प्रधान श्री विनोद भारद्वाज जी एवं प्रिंसीपल तरुणप्रीत कौर वेबिनार में सम्बोधित करते हुये।

नवांशहर में राहों रोड पर स्थित बीएलएम गलर्ज कालेज में हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में वेबिनार करवाया गया। हिन्दी के विश्व में बढ़ते कदम विषय पर बतलाये वेबिनार में मुख्य वक्ता हिन्दी विभाग गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर डा. सुनील कुमार रहे जबकि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज प्रमुख मेहमान रहे। मुख्य वक्ता डा. सुनील कुमार ने बताया कि पूरे विश्व में हिन्दी भाषा अपने कदम पसार रही है और इसने अपना रूतबा पहले की उपेक्षा कहीं ज्यादा बढ़ा लिया है। भारत में आने वाले समय में नई विद्या प्रणाली

के अनुसार हर विद्यार्थी अपने राष्ट्र भाषा में बड़े ही मान के साथ अपना विषय पढ़ सकेगा।

मुख्य मेहमान श्री प्रेम भारद्वाज महामंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बताया कि सदियों से हिन्दी भारतीयों में प्रसिद्ध रही है। सभी ग्रंथ हिन्दी भाषा में लोगों का ज्ञान बढ़ाते आ रहे हैं। हमें अपने हस्ताक्षर हिन्दी में ही करने चाहिये। हमें अपनी सामान्य बोल चाल हिन्दी में करनी चाहिये। उन्होंने कहा कि विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा हिन्दी है। चीनी भाषा के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।

भारत और अन्य देशों में 60 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी पढ़ते लिखते और बोलते हैं। इतना ही नहीं फिजी, मॉरिशस, गुयाना, सूरीनाम जैसे दूसरे देशों की अधिकतर जनता हिन्दी बोलती है। आज हिन्दी राजभाषा, सम्पर्कभाषा, जनभाषा के सोपानों को पार कर विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। कालेज प्रिंसीपल तरुणप्रीत कौर वालिया, हिन्दी विभाग के प्रमुख डा. अरुणा पाठक, आई क्यूएसी के कोआर्डिनेटर सुरिन्द्र कौर, तकनीकी कन्वीनर डा. ब्रह्म प्रकाश और मनोज कंडा ने बताया कि राष्ट्र की विडम्बना रही है कि

हम अपनी भाषा को त्याग कर अंग्रेजी जैसी भाषाओं को सीखने लगे हैं। अंग्रेजी ही हर देश में बोली जाने वाली भाषा बन गई है। हमें अन्य भाषा के साथ साथ हिन्दी को भी नहीं त्यागना चाहिये। हमें हिन्दी को अपनाना चाहिये। हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार किसी भी कीमत पर कम नहीं होना चाहिये। इस मौके पर कालेज प्रबन्ध समिति के प्रधान डा. देशबन्धु भल्ला, सचिव श्री विनोद भारद्वाज, निवेदिता, गौरी, अरुणा शुक्ला, रूबी, हरदीप, ईश्वर सिंह आदि मौजूद रहे।

- प्रिंसीपल बी.एल.एम.गलर्ज कालेज

## आर्य समाज माडल टाउन जालन्धर में धूमधाम से श्रावणी उपाकर्म मनाया



आर्य समाज मंदिर माडल टाउन जालन्धर में दिनांक 7 सितम्बर 2020 को अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ श्रावणी उपाकर्म पर्व मनाया गया। इस अवसर पर मंच पर विराजमान पंडित सत्य प्रकाश जी शास्त्री, श्री पंडित बुद्धदेव वेदालंकार, भजन गायक श्री सुरेन्द्र गुलशन। चित्र दो में आर्य समाज माडल टाउन के प्रधान श्री अरविन्द घई जी एवं अन्य विराजमान जबकि चित्र तीन में श्री अरविन्द घई सम्बोधित करते हुये।

आर्य समाज मंदिर माडल टाउन जालन्धर में दिनांक 7 सितम्बर 2020 को कोविड-19 को ध्यान में रखते हुये अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ श्रावणी उपाकर्म पर्व मनाया गया। सर्वप्रथम यज्ञ हुआ। पंडित सत्य प्रकाश शास्त्री, पंडित बुद्धदेव वेदालंकार व पंडित आनन्द प्रकाश ने यज्ञ करवाया। इस यज्ञ में मुख्य यजमान के रूप में डा. श्रीमती संगीता सूरी जी पधारी थी। यज्ञ के पश्चात सरदार सुरेन्द्र सिंह गुलशन ने श्रावणी पर्व के महत्व को बताते हुये कई भजन प्रस्तुत किये। इसके पश्चात पंडित सत्य प्रकाश शास्त्री जी ने अथर्ववेद के मंत्र पर चर्चा करते हुये बताया कि स्वाध्याय एवं सत्संग से मनुष्य अपने जीवन को परिमार्जित करता है। उन्होंने कहा कि श्रावणी उपाकर्म हमारे भारत वर्ष का सबसे पहला प्राचीनतम पर्व है। इससे पूर्व और कोई पर्व नहीं था। बरसात के जो चार

महीने हैं उन्हें हम श्रावण चतुष्टय के नाम से जानते हैं। बरसात के इन दिनों में ऋषि मुनियों के लिये समय उत्तम होता था जो नगरों में आकर वेद ज्ञान का प्रचार करते थे। वेदों का उपदेश करते थे। इसको ब्राह्मणों का पर्व माना जाता है। हमारी संस्कृति में चार पर्व मुख्य रूप से मनाये जाते हैं। ये सभी पर्व सभी मिल कर ही मनाते हैं। शास्त्री जी ने स्वाध्याय के विषय में बताया कि स्वाध्याय मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। अथर्ववेद के इस मंत्र **स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुमा यज्ञे प्रतिष्ठिताः। लोको निधनम्।।** में चार विशेष मानवीय गुणों को धारण करने की प्रेरणा दी गई है। स्व परिश्रम से कमाये हुए धन से ही संतुष्ट रहे। जो धन सब के लिये कल्याणकारी हो, सुखकारी हो, किसी को कष्ट व दुख

देकर न कमाया गया हो। संसार में जितनी भी लड़ाइयां हुई हैं उनका मूल कारण वेद के इस पवित्र उपदेश का उल्लंघन करने पर ही हुई हैं। जो भी हम काम करें उसमें सच्चाई होनी चाहिये। खुद सच्चाई से काम करें और दूसरों को भी सच्चाई से काम करने की प्रेरणा दें। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुये आर्य समाज माडल टाउन के प्रधान श्री अरविन्द घई ने कहा कि हमारे भारत वर्ष में जो भी पर्व आते हैं, हम उनको श्रद्धा से प्रसन्नता पूर्वक मनाते आए हैं। उन्होंने कहा कि श्रावणी का पर्व हमें वेदाध्ययन के लिए प्रेरित करता है। वेद के विषय में महर्षि का जो मत है, जो विचार है उस विचार को जन-जन तक पहुंचाने के लिए हमें वेद प्रचार को बढ़ावा देना होगा। श्रावणी के पर्व पर हम वेद के स्वाध्याय का व्रत लें। वेद का अध्ययन हमें मानव बनाता है। महर्षि दयानन्द ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म बताया

है। इस परम धर्म का पालन करने के लिए हमें श्रावणी पर्व पर व्रत ग्रहण करना है। हम घर-घर में वेद तथा महर्षि दयानन्द के संदेश को फैलाएं। आर्य समाजों का लक्ष्य वेद प्रचार होना चाहिए। सभी समाजों श्रावणी पर्व पर लोगों को स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित करें। वैदिक साहित्य लोगों में बाँटे और उसे पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पर्वों के द्वारा हमें जीवन जीने का ढंग पता चलता है। पर्व हमें पूर्ण करते हैं, आनन्दित करते हैं और हमारा पथ प्रदर्शन करते हैं। पर्व मनुष्य के जीवन में खुशियां लेकर आते हैं। ऋषि दयानन्द मानते थे कि यदि धरती के लोग वेद को अपना लें और उसकी शिक्षाओं के अनुसार अपना जीवन बिताने लग जाएं तो उनके जीवन से सब प्रकार के दोष दूर हो जाएंगे। सब लोग भाई-भाई की भाँति प्रेम से मिलकर रहा करेंगे।

( शेष पृष्ठ सात पर )

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से सुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।

पोआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org

सुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।

पोआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org